भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2024

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 66 - 0

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

भरतपुर के जाटों की उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा की मीमांसा

डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भरतपुर राजस्थान की महत्वपूर्ण रियासतों में से एक थी। यह रियासत केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण थी। यहाँ के जाट शासकों ने अपने गौरव, प्रतिष्ठा, सभ्यता और बृज संस्कृति की रक्षा के लिए लगातार संघर्ष किया। यही कारण है कि भरतपुर राज्य को राजस्थान की अन्य रियासतों से अलग एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

जाटों का इतिहास संघर्ष और स्वाभिमान से जुड़ा हुआ है। मुगल साम्राज्य के विघटन में जाटों का योगदान सर्वाधिक उल्लेखनीय रहा। उन्होंने न केवल मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया बल्कि स्वतंत्र सत्ता स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया कि वे पराधीनता में जीने वाले नहीं हैं। 18वीं शताब्दी में जब भारत राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता के दौर से गुजर रहा था, तब भरतपुर के जाट शासकों ने एक शक्तिशाली राज्य की नींव रखी।

19वीं शताब्दी के आरम्भ तक भरतपुर राज्य सुख-समृद्धि और वैभव से परिपूर्ण था। भले ही राजस्थान की अन्य रियासतों की भाँति भरतपुर को भी अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार करना पड़ा, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि भरतपुर के शासकों ने अपने स्वाभिमान या गौरव को तिलांजलि दी हो। इसके विपरीत, जब-जब अंग्रेज सत्ता ने भरतपुर राज्य की स्वतंत्रता और गरिमा को ठेस पहुँचाई, तब-तब यहाँ के स्वाभिमानी शासक और वीर योद्धा डटकर खड़े हो गए और संघर्ष का बिगुल बजा दिया।

18वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास ब्रिटिश सत्ता की स्थापना की दिशा में एक संक्रमण काल था। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जहाँ मुगल साम्राज्य का विघटन हुआ और भारत की राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हुई, वहीं उत्तरार्द्ध में अनेक क्षेत्रीय और जातीय राज्यों का उदय हुआ। इन्हीं राज्यों में भरतपुर का जाट राज्य भी शामिल था, जिसने राजनीतिक अस्थिरता के उस दौर में शक्ति और संगठन का परिचय दिया।

भरतपुर की इस ऐतिहासिक यात्रा से यह स्पष्ट होता है कि यह रियासत केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं थी, बल्कि यह जाट जाति की वीरता, आत्मगौरव और स्वतंत्रता प्रेम का प्रतीक थी। यहाँ के शासकों ने जो संघर्ष किया, उसने न केवल मुगल सत्ता को चुनौती दी बल्कि अंग्रेजों के सामने भी बार-बार यह सिद्ध किया कि भरतपुर राज्य अपनी अस्मिता और स्वाधीनता की रक्षा के लिए किसी भी बलिदान से पीछे नहीं हटेगा।

भरतपुर की भौगोलिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश काल में भरतपुर, ईस्टर्न राजपूताना एजेंसी के अंतर्गत एक अत्यंत महत्वपूर्ण रियासत थी। ब्रिटिश शासन में विलय से पहले यह राज्य अनेक महत्ववपूर्ण रियासतों और प्रांतों से घिरा हुआ था। इसके उत्तर में गुड़गाँव, उत्तर-पूर्व में मथुरा, पूर्व में आगरा, दक्षिण में धौलपुर और करौली, दक्षिण-पश्चिम में जयपुर तथा पश्चिम में अलवर राज्य स्थित थे। इस प्रकार भरतपुर न केवल भौगोलिक दृष्टि से बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण स्थिति में था।

यह राज्य 26^{0}-42' से 27^{0}-49' उत्तरी अक्षांश और 76^{0}-54' से 77^{0}-48' पूर्वी देशांतर के बीच फैला हुआ था। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण लगभग 76 मील और पूर्व से पश्चिम लगभग 48 मील था। कुल क्षेत्रफल 1,982 वर्ग मील था। ब्रिटिश कालीन अभिलेखों के अनुसार, इस राज्य की जनसंख्या लगभग 6.5 लाख थी और इसका वार्षिक राजस्व लगभग 21 लाख रुपए था।

भरतपुर की अधिकांश भूमि समतल है, जो कृषि के लिए अत्यंत अनुकूल थी। यही कारण था कि यह राज्य खाद्यान्न उत्पादन में अग्रणी माना जाता था। भरतपुर के दक्षिणी भाग में विशाल पर्वत श्रेणियाँ स्थित थीं, जिन्हें घाटियों की उपस्थिति के कारण 'डांग' कहा जाता था। राज्य के पश्चिमी भाग में अलीपुर की सबसे ऊँची पहाड़ी स्थित थी, जिसे स्थानीय लोग 'काला पहाड़' कहते थे। वहीं भरतपुर नगर के निकट माघोनी की पहाड़ी सबसे छोटी पहाड़ी कही जाती थी। खनिज उत्पादन की दृष्टि से यह राज्य अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ था, किंतु गंगा-यमुना के दोआब के प्रभाव में उपजाऊ भूमि होने के कारण यह राज्य कृषि उत्पादन में राजपूताना की रियासतों में सबसे आगे था। विशेष रूप से गेहूँ, जौ, बाजरा, चना और गन्ना जैसी फसलें यहाँ प्रचुर मात्रा में उगाई जाती थीं।

आगरा के पश्चिमी भाग में जाटों द्वारा प्रथम स्वतंत्र राज्य की स्थापना भरतपुर में ही हुई थी। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही 'बृजमंडल' का हिस्सा माना जाता है। पौराणिक सन्दर्भों में इसे कभी शूरसेन जनपद और कभी मत्स्य देश के रूप में भी जाना गया। चूँकि यह प्रदेश राजपूताना, मेवात और बृज की सीमा से सटा हुआ था और यहाँ जाटों का प्रभाव अत्यधिक था, इसलिए इसे 'जटवाड़ा' के नाम से भी पुकारा जाने लगा।

भरतपुर क्षेत्र से होकर बाणगंगा, गम्भीर, काकुन्द और रूपारेल जैसी बरसाती नदियाँ बहती थी, जिनसे राज्य की सिंचाई और कृषि को विशेष सहयोग मिलता था।

भरतपुर राज्य की जलवायु सामान्यतः समशीतोष्ण तथा शुष्क थी। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ प्रचंड गर्मी पड़ती थी, जबकि शीत ऋतु में ठंड अपेक्षाकृत अधिक होती थी।

सामाजिक दृष्टि से यहाँ जाटों की प्रधानता थी, किंतु अन्य जातियाँ भी बड़ी संख्या में निवास करती थीं। इनमें राजपूत, अहीर, गूर्जर, मेव, ब्राह्मण और कायस्थ प्रमुख थे। भाषा की दृष्टि से बृजभाषा यहाँ की प्रमुख बोली थी, जो लोगों के सांस्कृतिक जीवन और साहित्यिक अभिव्यक्ति का आधार थी।

भरतपुर राज्य में सात प्रमुख नगर और लगभग 1,295 ग्राम सम्मिलित थे। प्रशासनिक सुविधा के लिए राज्य को दो मुख्य भागों—भरतपुर और डीग—में विभाजित किया गया था। इसके अतिरिक्त बयाना, कुम्हेर, बैर, कामां और रूपबास जैसे कस्बे भी प्रशासनिक और व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते थे।

जाटों की उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा

भारतीय इतिहास में जाटों की उत्पत्ति एक अत्यंत विवादास्पद विषय रहा है। जिस प्रकार राजपूतों की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न मत और कथाएँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार जाटों की उत्पत्ति भी ऐतिहासिक शोधकर्ताओं और इतिहासकारों के लिए आकर्षण एवं वाद-विवाद का विषय बनी रही है। इसकी मुख्य वजह यह है कि प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जाटों का क्रमबद्ध और स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। ऐतिहासिक संदर्भों की कमी और स्थानीय परम्पराओं के कारण अनेक भ्रांत धारणाएँ उत्पन्न हो गई।

विशेष रूप से यूरोपीय विद्वानों ने इस विषय पर गहरी रुचि दिखाई। उनका मानना था कि जाट और राजपूत जैसी वीर, साहसी, युद्धप्रिय और पराक्रमी जातियाँ निश्चित ही भारत की मूल निवासी नहीं, बल्कि उत्तर-पश्चिम से आकर यहाँ बसी हुई नवीन जातियाँ रही होंगी। कुछ विद्वानों ने इन्हें मध्य एशिया, स्किथियन या हूण जातियों से जोड़ने का प्रयास किया। वहीं भारतीय परंपरा इन्हें आर्य समाज का ही अभिन्न अंग मानती है, जिनका मूल आधार प्राचीन वैदिक संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

जाटों के इतिहास में साहस, शौर्य और उद्यमशीलता के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम और स्वतंत्रता की प्रबल भावना परिलक्षित होती है। ये जाति अपनी प्रजातांत्रिक प्रवृत्ति और संगठनशीलता के लिए भी जानी जाती है। जाट पंचायतें और सामूहिक निणज़्य लेने की उनकी परंपरा उनके लोकतांत्रिक चरित्र की स्पष्ट परिचायक है।

प्राचीन काल में जाटों का भूगोलिक विस्तार अत्यंत व्यापक था। उत्तर में हिमालय की तराई तक, पश्चिम में सिंधु नदी के पूर्वी तट तक, दक्षिण में हैदराबाद से

लेकर अजमेर और फिर भोपाल तक, पूर्व में गंगा नदी तक जाट बाहुल्य क्षेत्र फैला हुआ था। इस विशाल भूभाग का मुख्य केन्द्र सिंध था। यहीं से जाटों ने अपनी शक्ति और प्रभाव का प्रसार किया। इतना ही नहीं, जाट सिंधु नदी के पश्चिमी क्षेत्र में भी फैले हुए थे। उनका प्रभुत्व पेशावर, बलोचिस्तान और सुलेमान पर्वतमाला के पार तक फैला हुआ था। यह विस्तृत भू-भाग यह प्रमाणित करता है कि जाट कोई सीमित और स्थानीय जाति नहीं, बल्कि प्राचीन भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्यापक प्रभाव डालने वाली शक्ति थे।

भारतीय इतिहास में 'जाट' शब्द की उत्पत्ति एक अत्यंत विवादास्पद विषय है। इस जाति का इतिहास जितना गौरवपूर्ण रहा है, उतनी ही इसकी नामावली रहस्यमय और बहुपरिचर्चित रही है। जाटों के पराक्रम, साहस और स्वतंत्रता-प्रेम के कारण इतिहासकारों ने सदैव इनकी उत्पत्ति और नाम पर विमर्श किया है। समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए, जो हमें इस नाम की ऐतिहासिक यात्रा को समझने में सहायक होते हैं।

कुछ विद्वान जाट नाम को पुराणों की कथाओं से जोड़ते हैं। परशुराम और सहस्राजुर्न के युद्ध के बाद जब पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन हो गई, तब क्षत्राणियों ने ब्राह्मणों से वीर्य दान लेकर संतान उत्पन्न की। यह संतानें 'जठर' (अर्थात् पेट से उत्पन्न) कहलायीं और समय के साथ यह शब्द 'जाठर' तथा फिर 'जाट' बन गया। यह मत पं. अंगद शास्त्री की 'जाठरोत्पत्ति' (वि.सं. 1926) में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि यह व्याख्या भावनात्मक और पौराणिक है, परंतु आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे स्वीकार करना कठिन है।

एक दूसरा मत यह है कि उत्तर भारत में हिमालय क्षेत्र में स्थित 'जठर पर्वत' (देवकूट) के आसपास निवास करने वाले लोग 'जठर' कहलाए। भूगोल में यह स्थान हिमालय के 'पेट' अर्थात् मध्य भाग में माना जाता था। वहाँ बसने वाले लोग धीरे-धीरे 'जाठर' और आगे चलकर 'जाट' कहलाए। इस सिद्धांत की आलोचना यह कहकर की जाती है कि स्थान-नाम से जाति-नाम बनने की प्रक्रिया सामान्य नहीं मानी जाती।

पाश्चात्य विद्वान ग्राउज ने जाट शब्द को 'जत्थर' से विकसित माना। उनके अनुसार यह भाषाई संक्षिप्तीकरण का परिणाम है। भाषाशास्त्र में यह स्वाभाविक है कि बड़े शब्द छोटे होते जाते हैं। 'जत्थर' से 'जाट' का रूप इसी क्रम में बना माना गया। लेकिन इस सिद्धांत की समस्या यह है कि यदि जाट किसी अन्य जाति से उत्पन्न हुए थे, तो इसका उल्लेख इतिहास के प्रामाणिक ग्रंथों में अवश्य मिलना चाहिए था, जो कि नहीं मिलता। एक ऐतिहासिक कारण यह भी है कि जाट समुदाय लंबे समय तक सामान्यतः अशिक्षित रहा। उन्होंने अपनी प्राचीन वंशावली और उत्पत्ति संबंधी परंपरा को संरक्षित

करने पर ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप उनके उद्‌भव और नाम के विषय में कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अन्य जातियों ने भी जाटों के उद्गम की गहन खोज करने में रुचि नहीं दिखाई।

कुछ इतिहासकार जाट शब्द को संस्कृत के 'ज्ञात' (जानने वाला) या 'जात' (जन्म लेने वाला) शब्द से जोड़ते हैं। एक मत यह भी है कि 'यात' (यायावर या घूमने वाला) शब्द से 'जाट' शब्द विकसित हुआ होगा, क्योंकि जाट प्रारंभ में यायावर जीवन जीते थे। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने इसे मध्य एशिया से आए 'जट' अथवा 'गेट' नामक जाति से भी जोड़ा है।

इन सभी मतों को मिलाकर देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि 'जाट' नाम की कोई एक निश्चित, सर्वमान्य उत्पत्ति नहीं है। पौराणिक, भौगोलिक, भाषावैज्ञानिक और ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से इसके अलग-अलग स्पष्टीकरण हैं। सबसे प्रबल संभावना यह प्रतीत होती है कि यह नाम 'जत्थर', 'जठर' या 'जात/ज्ञात' जैसे प्राचीन शब्दों से समय के साथ संक्षिप्त होकर 'जाट' बना हो।

राजस्थान के प्रथम आधुनिक इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने जाटों को भारत की 36 क्षत्रिय कुलों में स्थान दिया है। उन्होंने जाटों की सामाजिक जीवन-शैली, आचार-विचार, रीति-रिवाजों और धार्मिक परंपराओं का गहन अध्ययन किया। उनके अनुसार जाट वास्तव में इण्डो-सीथियन वंशज हैं, जो लगभग ईसा से एक शताब्दी पूर्व आक्सस घाटी से भारत में प्रवेश कर पंजाब क्षेत्र में बस गए। टॉड ने भारतीय जाटों को यूरोप की प्राचीन जातियों गॉथ, गेटी, मेसेगेटी, यूची आदि से सम्बद्ध माना। इस प्रकार टॉड ने जाटों को भारत के स्थानीय क्षत्रियों के साथ-साथ बाहरी योद्धा जातियों का उत्तराधिकारी माना।

जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ने टॉड के मत का समर्थन करते हुए जाटों की पहचान प्राचीन यूनानी इतिहासकार स्ट्रैबो द्वारा वर्णित 'जत्थी' तथा प्लिनी और टॉलेमी द्वारा उल्लिखित 'जत्ती' से की। इससे यह धारणा बलवती होती है कि प्राचीन विश्वश्व साहित्य में जिन 'जत्थी/जत्ती' का उल्लेख है, वे ही आगे चलकर भारतीय जाट कहलाए। इब्बेक्सन और विन्सेंट स्मिथ ने भी टॉड की इस परिकल्पना का अनुमोदन किया और जाटों को उत्तर-पश्चिम से भारत आने वाले योद्धा समुदाय का अंग माना।

इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वानों ने जाटों की उत्पत्ति को पूरी तरह भारतीय परंपरा में निहित माना। सर हर्बट रिजले, डॉ. कालिकारंजन कानूनगो और नेसफील्ड का मत है कि जाट वास्तव में प्राचीन आर्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

डॉ. कानूनगो के अनुसार जाटों की शारीरिक बनावट, भाषा, चरित्र, भावनाएँ, सामाजिक संस्थाएँ और प्रजातांत्रिक प्रवृत्ति उन्हें न केवल भारतीय समाज से जोड़ती है,

बल्कि उन्हें प्राचीन आर्य संस्कृति का अधिक शुद्ध और प्रामाणिक प्रतिनिधि बनाती है। उनका मानना था कि जाट ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसी तीन उच्च हिंदू जातियों की तुलना में कहीं अधिक निकटता से प्राचीन आर्यों की परंपराओं को संरक्षित किए हुए हैं।

जाटों की उत्पत्ति पर विचार करने का एक रोचक प्रयास मेरठ के वकील चौधरी लहरी सिंह ने किया। उन्होंने 1883 ई. की जनगणना अधिकारियों के अनुरोध पर 'दि एथनोलॉजी ऑफ दि जाट्स' नामक एक छोटी पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने जाट शब्द की उत्पत्ति 'जाठर' शब्द से बताई। परंतु वे 'जाठरोत्पत्ति' के लेखक से अलग दृष्टिकोण रखते थे। उनकी मान्यता थी कि 'जाठर' वास्तव में विदेशी लोग थे, और यह नाम उन्हें महाभारत, विष्णु पुराण और भागवत जैसे ग्रंथों में वर्णित जाठर पर्वत से प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्होंने जाटों को भारतीय भूगोल से जोड़ते हुए भी उनकी उत्पत्ति में विदेशी तत्वों को स्थान दिया।

भारतीय इतिहास में जाट समुदाय की उत्पत्ति के अन्तर्गत कभी इन्हें आर्यों का सच्चा उत्तराधिकारी कहा गया, तो कभी इन्हें सीथियनों अथवा हूणों जैसी उत्तर-पश्चिमी जातियों का वंशज ठहराया गया। यूरोपीय विद्वानों और भारतीय इतिहासकारों दोनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इस प्रश्न का समाधान करने का प्रयास किया है।

नृवंशशास्त्री सर हरबर्ट रिजले ने भारतीय समाज को शारीरिक गठन के आधार पर सात प्रमुख समूहों में बाँटा। इनमें दूसरा समूह 'इण्डो-आर्यन शैली' कहलाता है, जो पंजाब, राजपूताना और कश्मीर क्षेत्रों में विद्यमान है। इस समूह का प्रतिनिधित्व प्रमुखतः जाट और राजपूत करते हैं। इस प्रकार के लोगों का सिर लम्बा, नाक सीधी व सुडौल, चेहरा संकीर्ण और लम्बाकार, ललाट विकसित, कद ऊँचा और शरीर मजबूत पाया जाता है। त्वचा का रंग साफ हल्का भूरा होता है। रिजले के अनुसार यह जाति अपने शारीरिक गठन और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से आर्यन मूल की अधिक निकटतम प्रतीत होती है।

कुछ यूरोपीय विद्वानों ने जाटों को सीथियन अथवा हेरोडोटस द्वारा वर्णित 'गेटे' जाति का वंशज बताने का प्रयास किया। परंतु रिजले ने इसे केवल कल्पना और अटकल पर आधारित माना। उनके अनुसार जाटों का वास्तविक संबंध भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासियों और आर्यों की परम्परा से अधिक प्रामाणिक है।

पंजाब के प्रसिद्ध जनगणना आयुक्त डेंसिल इब्बेत्सन का मत था कि जाट और राजपूत भारत में आने वाली दो पृथक् आव्रजक तरंगों के प्रतिनिधि हैं। उनका अंतर नस्लीय कम और सामाजिक अधिक है। अर्थात् दोनों की उत्पत्ति में अंतर की अपेक्षा उनकी सामाजिक परिस्थितियों और जीवन-व्यवहार ने उन्हें अलग पहचान प्रदान की।

भारतीय ग्रंथों में भी जाटों के संबंध में अप्रत्यक्ष संकेत मिलते हैं। महाभारत में

'साकल' क्षेत्र के 'जटित्का' का उल्लेख मिलता है। पुणे के इतिहासकार चिन्तामणि विनायक वैद्य इन्हीं 'जटित्काओं' को जाट मानते हैं। कर्णपर्व में 'जर्तिका' को बाहिकों की एक शाखा कहा गया है। परंतु डॉ. कालिकारंजन कानूनगो इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि महाभारत के बाहिकों को अधर्मी और धर्म-विरुद्ध आचरण वाला बताया गया है, जबकि जाटों में ऐसा कोई चारित्रिक दोष दिखाई नहीं देता। अत: दोनों की समानता उचित प्रतीत नहीं होती।

जाटों की अपनी परम्पराएँ और वंशावलियाँ उन्हें सिन्धु नदी के पश्चिमी क्षेत्र से जोड़ती हैं। वे स्वयं को यदुवंशी मानते आए हैं। पाँचवीं शताब्दी के एक अभिलेख में उनके 36 राजकुलों में सम्मिलित होने और यदुवंशी कहलाने का उल्लेख मिलता है। यदुवंशी होना अर्थात् स्वयं को भगवान श्रीकृष्ण का वंशज मानना। ऋग्वेदकाल में यदुवंशी सप्तसिन्धु प्रदेश में निवास करते थे। महाभारत और पुराणों में भी यदुवंश का विस्तृत वर्णन है। यही परम्परा आगे चलकर जाटों की वंशीय चेतना का हिस्सा बनी।

11वीं शताब्दी में अरब विद्वान अलबेरूनी ने भारत का भ्रमण किया। उन्होंने मथुरा के कृष्णकथानक का उल्लेख करते हुए लिखा— "वासुदेव के घर एक बालक उत्पन्न हुआ, जो जट्ट परिवार से था। यह समुदाय पशुपालक था और समाज में शूद्र समझा जाता था।"

यद्यपि यह वर्णन संक्षिप्त और सामाजिक दृष्टि से सीमित है, फिर भी इससे यह प्रमाणित होता है कि उस समय तक जाट नाम और उनकी पहचान समाज में प्रचलित थी।

भारतीय इतिहास में जाट जाति की उत्पत्ति और उसकी परम्पराएँ विविध दृष्टिकोणों से समझी जाती रही हैं। जिस प्रकार यदुवंश के अनेक गोत्र—अण्डक, भोज, कुकुर, दर्शणा आदि—मिलकर एक संयुक्त यादव जाति का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार जाटों के भीतर भी भिन्न-भिन्न गोत्रों की परम्पराएँ मिलकर उन्हें एक संगठित पहचान प्रदान करती हैं।

सिनसिनवार, सोगर, खूंटेल, तेनवा, देशवाल आदि जाट गोत्र अपनी अलग-अलग परम्पराओं और इतिहास के साथ मिलकर जाट जाति की समग्र एकता को पुष्ट करते हैं। यहाँ तक कि डेरा गाजीखान जैसे बाहरी प्रदेशों के बाब्बर भी स्वयं को जाट कहते रहे हैं। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि जाट केवल किसी एक भूभाग तक सीमित समुदाय नहीं थे, बल्कि उनके भीतर एक व्यापक और बहुआयामी जातीय चेतना कार्यरत थी।

भागवत पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि जब राजा सगर ने हैहयों का नाश किया, तो उसके बाद उसने यवनों, शकाओं और बारबरों के विरुद्ध शस्त्र उठाए। ये सब

हैहयों के मित्र थे और पूर्वजों के शत्रु। यह विवरण इस बात का प्रमाण है कि भारतीय परम्परा में यवन, शक और अन्य बाहरी जातियाँ सदैव संघर्ष और टकराव का कारण बनीं। संभवत: इन्हीं परिस्थितियों ने स्थानीय क्षत्रिय और यादव समूहों को एक नए जातीय रूपांतरण की ओर अग्रसर किया, जिसके परिणामस्वरूप 'जाट' जैसी एक संगठित पहचान उभरी।

यह प्रश्न अक्सर उठता है कि यदि जाट मूलत: यदु वंशी थे, तो उन्होंने 'जाट' नाम कब और क्यों धारण किया ? इतिहास इस पर मौन है। जैसे यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि क्षत्रियों ने 'राजपूत' नाम कब और क्यों ग्रहण किया, वैसे ही 'जाट' नाम की उत्पत्ति भी अंधकार में है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि समय के साथ बदलते सामाजिक और राजनीतिक परिवेश ने पुराने वंशों को नये नाम और रूप प्रदान किए।

इतिहास और नृवंशशास्त्र की कसौटी पर यह तथ्य स्वीकार्य है कि जाटों की इंडो-आर्यन उत्पत्ति निर्विवाद है। वे न तो सीथियन हैं, न ही ब्राह्मणों अथवा क्षत्रिय विधवाओं से उत्पन्न संतति, न ही मध्य एशिया अथवा किसी काल्पनिक 'जठर पर्वत' से आए बर्बर आक्रमणकारी। जाट वास्तव में भारतभूमि के सच्चे सपूत हैं। उनका प्राचीन निवास मालवा और राजपूताना माना जाता है। यहीं से वे आगे बढ़कर पंजाब और सिन्धु-पार क्षेत्रों तक फैले।

जाटों की यदुवंशी परम्परा का सबसे ठोस उदाहरण भरतपुर राज्य के शासक माने जाते हैं। भरतपुर के शासक स्वयं को भगवान श्रीकृष्ण का यदुवंशी वंशज मानते हैं। वे अपनी उत्पत्ति यादव वंशी मदनपाल के वंशज बालचंद से बताते हैं। बालचंद के वंशजों ने अपने पैतृक ग्राम सिनसिनी से 'सिनसिनवार' नाम धारण किया। इस प्रकार यह वंश आगे चलकर सिनसिनवार जाटों के रूप में प्रसिद्ध हुआ। भरतपुर के शासकों ने न केवल यदुवंशी गौरव को जीवित रखा, बल्कि मुगलों और मराठों के युग में अपनी वीरता और स्वाधीनता के कारण भारतीय राजनीति में एक अद्वितीय स्थान बनाया।

भारतीय इतिहास में जातीय जीवन कभी स्थिर नहीं रहा। वर्ण-व्यवस्था का विघटन, नए वर्गों का उदय और उत्तर-पश्चिम से आने वाली विदेशी जातियों की निरंतर लहरों ने समाज में अनेक मिश्रण और समन्वय उत्पन्न किए। जाटों का स्वरूप भी इन्हीं ऐतिहासिक परिस्थितियों का परिणाम माना जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जाट न तो विदेशी आक्रांता थे और न ही किसी निम्न वर्ग की संतति, बल्कि वे भारत की आर्यन परम्परा के उत्तराधिकारी थे। उनकी परम्परा, गोत्र, और भरतपुर जैसे शासकों की यदुवंशी मान्यता यह सिद्ध करती है कि जाट जाति भारतीय इतिहास का एक प्राचीन और गौरवशाली अंग है।

❑❑❑